Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

हिन्दी आत्मकथा–साहित्य में महिला आत्मकथा का स्थान

ओम प्रकाष वत्स

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ति. माँ. भा. वि. वि., भागलपुर

Article Info

Publication Issue :
March-April-2023
Volume 6, Issue 2

Page Number : 01-08

Article History
Received : 01 March 2023
Published : 15 March 2023

सारांश साहित्य कला है, समाज का दर्पण है, परंतु स्त्री साहित्य इसके साथ–साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वायत्तता का साहित्य है, जहाँ लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना होती है। अतः यह सही ही कहा गया है कि जहाँ दमन है, आतंक है, भय है, संताप है तथा शोषण है, वहीं उसके विरोध में स्त्री साहित्य सामने है। परिवर्तन एकदम नहीं होता। परिवर्तन की एक प्रक्रिया होती है। स्त्री की स्वतंत्रता का पहला चरण यही है कि वह दूसरों द्वारा दी गई देह की अवधारणा से मुक्त हो। अपनी देह के फैसले खुद ले। नारी की चेतना की पैरवी रचनात्मक जगत में तब तक अधूरी, बे मायने, सतही और अयथार्थवादी होगी जब तक देश की आधी आबादी की शेष पैंतालीस प्रतिशत उत्पीड़ित ग्रामीण स्त्रियों की बुनियादी समस्याएँ उकेरी नहीं जाएँगी। स्त्रीत्ववादी लेखन ने दो बातें तय कर दी है। पहली, कि वह एक स्वतंत्र साहित्यिक प्रकार्य है। यह भले ही हिन्दी में कोई आक्रामक आन्दोलन नहीं बना है, लेकिन इसने साहित्येतिहास के मर्दवादी पाठ को विखण्डित कर दिया है। दूसरी यह कि आलोचना के चालू औजार उसे पढ़ने में नाकामयाब हैं। इसलिए नारी जाति को चाहिए कि अपनी मुक्ति के सवाल को प्राथमिकता दें और सोचें कि हमारे जीवन का प्रमुख लक्ष्य क्या है? उसको पाने की हममें कितनी क्षमताएँ और संभावनाएँ हैं और उन्हें साकार करने के लिए हमें क्या करना है? अतः ऐसे में यह जरुरी है पूँजीवाद एवं पितृसत्ता से एक साथ लड़ा जाये। फिर तो पुरुष वर्ग महिलाओं के समर्थन में आयेगें।

भारतीय संस्कृति में आदिकाल से नारी समाज एवं साहित्य का केन्द्र बिन्दु बनी हुई है, बावजूद नारी अस्मिता का प्रश्न अनादि काल से अनेक रूढ़ियों और परम्पराओं या मर्यादा के अनुसरण में दबता आया है। हर काल में उन्हें अलग–अलग दृष्टिकोण और उपमों से नवाजा गया है। आदिकाल में उसे 'देवी' या 'शक्ति' कहा गया, तो

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

भक्तिकाल में उसे 'माया', रीतिकाल में उसे 'श्रृंगार' और 'भोग' की वस्तु तो आधुनिक काल में उसे केन्द्र बिन्दु बनाकर उस पर विमर्श किये गये। जबकि नारी भी पुरुष के समान एक विचारशील है। उनका भी अपना निजी सोच एवं व्यवहार है और उस सोच के अनुरूप समाज का निर्माण करना चाहती है। समय के प्रवाह के साथ परिस्थितियों में बदलाव आया और स्वयं नारी ने भी जागृत होकर अपनी आत्मवेदना को व्यक्त करने के लिए साहित्य जगत में प्रवेश किया। हिंदी साहित्य में पिछले तीन–चार दशक में महिला लेखिकाओं ने अपना विशिष्ट योगदान दिया है। जिसमें मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा उल्लेखनीय हैं। ज्ञातव्य है कि कुछ समय पूर्व तक स्त्री लेखन पर यह आरोप लगाया जाता था कि यह सीमित दृष्टि का साहित्य है, जो परिवार के दायरे से बाहर नहीं निकलता। यह समय समाज के उन पेचीदा आयामों को नहीं उठाता जो कि समकालीन जीवन को परिभाषित कर सके। लेकिन धीरे–धीरे इन आरोपों का अनौचित्य स्वतः सिद्ध होता चला गया। आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ–साथ आत्मसजगता का रेखांकन पिछले कुछ वर्षों में महिला लेखन का केन्द्र बिन्दु रहा है। हिंदी कथा साहित्य नई सदी में अधिक से अधिक स्त्री केन्द्रित बना है। कथालेखन के क्षेत्र में स्त्री लेखिकाओं ने अपने कथा लेखन को अधिक प्रासंगिक स्वरूप प्रदान किया है। उन्होंने विषयवस्तु की दृष्टि से नई जमीनों को तलाशा है और समस्याओं को सरोकार के नये कोणों से प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य विशेषकर महिला लेखिकाओं द्वारा स्त्री जीवन के अनेक अनछुए पहलुओं को उजागर करने में समर्थ हुई हैं, जिनका कि स्वरूप पहले स्पष्ट नहीं था। आज स्त्री लेखन में आंचलिक परिवेश में संघर्षशील स्त्री के नये और बदलते चित्र दिखाई दे रहे हैं। आज देखें तो गीतांजलि श्री, अलका सरावगी, प्रभा खेतान, जया जादवानी, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, मधु कांकरिया, महुआ माँझी, अनामिका आदि लेखिकाओं ने पहले से मौजूद स्त्रीवादी लेखन को नये सन्दर्भो में नयी अभिव्यक्ति और नये मुहावरों को सर्जित करते हुए प्रभावशाली स्वरुप देने में समर्थ दिखती हैं। पारंपरिक स्त्रीवादी विचारधारा से अलग नारी की दैहिक स्वतंत्रता के प्रश्न को पीछे छोड़ते हुए स्त्री व्यक्तित्व को पुरुष निरपेक्ष दृष्टि से प्रस्तुत करने का नूतन प्रयास नवागन्तुक लेखिकाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। कथा साहित्य की विषयवस्तु के चयन में समकालीन बोध के साथ–साथ शिल्प विधान में भी पर्याप्त नवीनता दिखाई देती है। अभिव्यक्ति की धारदार शैली नई सदी के महिला लेखन की विशिष्टता है। भारतीय समाज में स्त्री के नित बदलते हुए स्वरूप तथा उसकी बदलती हुई भूमिका को इन लेखिकाओं ने विस्मयकारी साहस के साथ प्रस्तुत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। इसी संदर्भ में महिलाओं द्वारा रचित आत्मकथा लेखन ने भी साहित्य जगत को उद्वेलित किया है। अकस्मात् महिला आत्मकथा लेखन में गौरतलब वृद्धि हुई है। इन आत्मकथाओं ने स्त्री विमर्श को परखने के लिए नयी दृष्टि प्रदान की है।

अद्यतन हिन्दी साहित्य में महिला–लेखन में एक तरह से बाढ़–सी आ गई है, चाहे वह लेखन का कोई भी विधा क्यों न हो। एक से बढ़कर एक आत्मकथा सामने आ रही है। यथा – अमृता प्रीतम की रचना

''रसीदी टिकट', मन्नू भंडारी कृत ''एक कहानी यह भी'', कृष्णा अग्निहोत्री की, ''लगता नहीं है दिल मेरा'', कृष्णा सोबती कृत, 'सोबती–वैद संवाद'', चन्द्रकिरण सोनरिक्शा कृत 'पिंजरे की मैना'', पद्मा सचदेव कृत 'बूँद बावड़ी'', प्रभा खेतान की ''अन्या से अनन्या'', मैत्रेयी पुष्पा रचित, ''कस्तूरी कुंडल बसै' तथा ''गुड़िया भीतर गुड़िया'', तहमीना दुरानी, ''मेरे आका'', रमणिका गुप्ता कृत ''हादसे'', कौशल्या बैसंत्री की ''दोहरा अभिशाप'', बेबी हाल्दार रचित, ''आलो अंधारी'', तस्लीमा नसरीन कृत ''मेरे बचपन के दिन'', इत्यादि हिन्दी साहित्य के अमूल्य आत्मकथाएं हैं। महिला रचनाकारों ने अपने आत्मकथा द्वारा जो मर्दों के चेहरे से नकाब उतारा है, उससे मर्दवादी सोच में बौखलाहट देखा जा सकता है। इस बौखलाहट का परिणाम है विभूतिनारायण राय का वह इंटरव्यू जो राकेश मिश्र के द्वारा लिया गया था, उसमें – ''लेखिकाओं के लिए अमर्यादित शब्द 'छिनाल' का आरोप तक लगाया गया।''[1] फिलहाल स्त्री–विमर्श बेवफाई के विराट उत्सव की तरह है। यों तो रायजी के इस हमले में कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, कृष्णा अग्निहोत्री, मृदुला गर्ग, रमणिका गुप्ता आदि सभी लेखिकाएँ आती हैं, मगर यहाँ निश्चय ही इशारा मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा ''गुड़िया भीतर गुड़िया' की ओर है। कितना दोरंगी नीति है कि जब पुरुष स्त्रियों पर लिखे तो सब कुछ ठीक है और यदि नारी ने अपनी भाषा तथा अपनेनुसार लिखना शुरू किया तो पहाड़ गिर पड़ा। वस्तुतः रचनात्मक जवाब देने की जब शक्ति–प्रतिभा नहीं होती तो ऐसी मर्दवादी लफंगई शुरू हो जाती है। महिलाएँ भी अब चुपचाप कहाँ रहने वाली थी। प्रतिक्रियास्वरुप महिला नेताओं, बुद्धिजीवियों और लेखिकाओं का ऐसा जबरदस्त विरोध आरंभ हुआ कि रायजी जैसे मानसिकतावादी लोगों को तत्कालीन को मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल और अनेक महिला संगठनों से अपने इस ''दुर्भाग्यपूर्ण शब्द–चुनाव के लिए'' माफी माँगनी पड़ी।

स्त्री लेखन का विषय–वस्तु पूरे समाज और देश की हालात से संबंद्ध होने के बावजूद इसका केन्द्रीय मुद्दा महिलाओं से जुड़ा है। ऐसा होना इसलिए स्वभाविक है कि स्त्री समुदाय सदियों की पीड़ा को भुगतती रही है। कुल मिलाकर रचनात्मक साहित्य सृजन में महिलाओं की भागीदारी में निरन्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। पर कुछ नारी लेखक के समालोचनात्मक विद्वानों का कहना है कि नारी का लेखन का विषय वस्तु सीमित अथवा बंधा हुआ है। मुख्यतः अपने लेखनी में पारिवारिक, सामाजिक एवं निजी समस्याओं से संबंधित मुद्दों को ही उठाती हैं। पर ऐसा आरोप लगाना उचित नहीं माना जा सकता है। यह स्वाभाविक है कि जिन समस्याओं एवं परिस्थितियों से उन्हें इसलिए गुजरना पड़ता है, उस विषय को प्राथमिकता मिलेगी ही। फिर आज कोई ऐसा बंदिश नहीं दिखता जहाँ पर मान लिया जाए कि लेखनी का यह क्षेत्र स्त्री और पुरुष के लिए सुनिश्चित है। लिखने में स्त्री पुरुष के विषयों का बँटवारा अथवा निर्धारण पूरी तरह आज अप्रासंगिक हो चुका है। यह कहा जा सकता है कि भले ही महिलाओं के लेखन की अपनी कुछ सीमाएँ हो, पुरुषों की सत्ता को खुलकर चुनौती देने में उन्हें संशय होता हो, कुछ लोग उनकी बेबाकी को कुंठा एवं परंपरा के विरुद्ध मानते हो, तो कुछ लोग यह

आरोप लगाते है कि जिस तरह से सेक्स पर बेबाकी से राय रखती हैं उससे साहित्य भी विकृत हो रहा है, यह महिला साहित्यकारों एवं साहित्य दोनों के लिए ही चुनौती है। पर इन सबके बावजूद आज महिलाएँ बढ़–चढ़ कर लेखन कार्य में जुड़ी हुई है और अच्छा–खासा पाठक वर्ग भी उनकी रचनाओं को हौसला अफजाई कर रहा। वस्तुतः स्त्री–पुरुष दोनों की लेखनी साहित्य जमात जगत में पूरक है।

महिलाओं में आए जागृति, शिक्षा, स्वावलंबन एवं समाज में आ रहे बदलाव का ही नतीजा है कि महिला लेखन के क्षेत्र में नब्बे दशक से एक नए युग की शुरुआत हुई और यह निरंतरता से कायम है। पहले जहाँ एकाध महिला लेखन कला से अपने को जोड़ती थी अथवा शौक रखते हुए अपना कैरियर बनाती थी, अब वह बहुतायत में दिखी जा सकती है। इसी पृष्ठभूमि में महिलाकृत आत्मकथा लेखन में भी प्रचुरता देखेंने को मिल रही है। आश्चर्य की बात है आत्मकथा लेखन अन्य विधाओं के तुलना में बाद में आई। संभवत इसका कारण यह कहा जा सकता है कि महिलाओं द्वारा रचित आत्मकथा कुछ संस्करण तक सीमित थी। हिन्दीत्तर भाषाओं में उन्नीसवीं सदी से ही महत्त्वपूर्ण आत्मकथाएँ मिलतीं है और जिसमें स्त्री–जीवन और उनकी जटिलताओं से समाज रूबरू होता है। देखें तो अठारहवीं सदी में आत्मकथा का जन्म महान लोगों द्वारा अपनी जीवनी, उनकी गाथाओं, संघर्षों इत्यादि से समाज को परिचय करवाने के लिए हुआ। निश्चित रुप में आत्मकथा में अपनी उपलब्धियों का बखान के बू से इनकार नहीं किया जा सकता था। उस समय ऐसा कोई उदाहरण नहीं दिखता जहाँ की आम व्यक्ति अपनी आत्मकथा को लिखा हो। संभवतः यही कारण है कि स्त्री आत्मकथा का आरंभ देर से हुई और थोड़ी संख्या में उपलब्ध होती है। इस संदर्भ में कुछ विद्वानों का मानना है कि स्त्रियों की पुरूष प्रधान समाज की संरचनाओं में महिलाओं में इस प्रकार का हिम्मत आना आसान नहीं होता था।[2] महिलाओं की इस प्रकार की वस्तु–स्थिति को नकारा नहीं जा सकता, परंतु आज आत्मकथा स्त्रियों की खुद की आवाज बनी है, जिनके माध्यम से उनके विचार एवं जीवन के उनके निजी अनुभव सामने आ रही हैं और वह भी उनकी खुद के नजरिये से।

समकालीन महिला आत्मकथा

जिस प्रकार की भारतीयों की सामाजिक पष्ठभूमि है और लोग बौद्धिक रुप से अभी भी बहुत हद तक पंरपरावादी है, उस परिवेश में महिलाओं के लिए आत्मकथा की रचना किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं थी। उन्हें हमेशा समाज में दोयम दर्जे की स्थिति से गुजरना पड़ा है। वे किसी की बहू, बेटी, माँ इत्यादि के नामों से ही पहचानी जाती रहीं हैं। निश्चित रूप से महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिए जो आंदोलन किये उनसे पुरूषवादी मानसिकता वाली समाज में पहचान मिली। इस कड़ी में स्त्री–आत्मकथा नारी समुदाय को जगाने एवं उनके प्रति समाज की नजरिया को बदलने में प्रभावी भूमिका निभाया है। महिलाकृत आत्मकथा ने एक तरह से साहित्यिक और सामाजिक दोनों स्तर पर स्त्री बहस को केंद्रीय मुद्दा बना दिया। हालाँकि भले ही

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक के बाद आत्मकथा लेखन प्रयोग में आया हो, परंतु इस तरह के विचारों की नींव पूर्व के लेखन में हम देखें सकते हैं। शिवरानी देवी, महादेवी वर्मा इत्यादि के स्मरण में स्त्री के सशक्त रूप को का दर्शन मिलता है। उन्होंने अपनी लेखनी में पुरुषवादी अहंकारी सोच को पूरे आत्मविश्वास के साथ विरोध कर स्त्री के अधिकारों एवं मान– सम्मान की बात कही हैं। आज बखूबी इस परंपरा को मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भंडारी, कौशल्या बैसंत्री जैसी महिलाओं ने अपनी आत्मकथाओं के द्वारा आगे बढ़ाया है। अपने अधिकारों के प्रति सजगता, अपने खिलाफ उठने वाला किसी भी प्रतिरोध का डटकर मुकाबला करना, अपने परिवारों के प्रति दायित्वों का निर्वहन, शिक्षा, स्वावलंबी, जीवन यापन, खुद से निर्णय लेने आदि तमाम पहलुएँ महिलाओं को सशक्त बनाती हैं। इन तमाम मुद्दों को निडरता के साथ महिलाओं ने अपनी आत्मकथा में वर्णित की हैं। आत्मकथा में लेखिका जद्दोजहद करती दिखती है। सही मायने में स्त्री विमर्श से जुड़े तमाम पहलुओं को आत्मकथा में उठाया गया है, जो एक तरफ स्त्रियों की बेचारगी न्याय पाने की अभिलाषा को दर्शाती है तो दूसरी ओर उन में आए हुए आत्मविश्वास को भी दर्शाता है।

'एक कहानी यह भी', 'एक अनपढ़ कथा' 'हादसे', 'दोहरा अभिशाप', 'गुड़िया भीतर गुड़िया', आदि शीर्षक समाज को अनुभव करवाता है कि नारी को किन–किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। इसकी झलक आत्मकथाओं में बखूबी दिखायी देती है। डॉ. प्रतिभा अग्रवाल ने दो भागों में आत्मकथा लिखी है। प्रथम भाग 'दस्तक जिंदगी की है, जो सन् 1980 में प्रकाशित हुआ है। इसमें अपने परिवार की तथा उस परिवारों से जुड़े लोगों का विवरण दिया है। दूसरा भाग 'मोड़ जिंदगी का' प्रकाशित हुआ। इस भाग का सन् 1986 में प्रकाशन हुआ है। इसमें लेखिका ने कलकत्ता आने के बाद अपने पारिवारिक जीवन के सुख दुख के साथ हिंदी तथा बंगला रंगमंच से जुड़े महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के योगदान को तटस्थ रूप से चित्रित किया है। यह सिर्फ आत्मकथा नहीं है बल्कि रंगमंच का इतिहास और नाट्यशास्त्र भी है।

कुसुम अंसल ने 'जो कहा नहीं गया' आत्मकथा लिखी, जो सन् 1986 में प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में आसक्ति–विरक्ति का भाव गहराई से दिखता है। अलीगढ़ के अमीर घर में एकलौती बेटी को 'अनाथ बालिका' की तरह पाला जाता है और उसे संतानहीन दम्पति को गोद लेने के रूप में 'डोनेट' कर दिया जाता है। संतान के रूप में बालिका का स्थान नीचे है, इस धारणावाले समाज की माया ही अपना मकड़जाल फैलाए हुए दिखाई पड़ती है।[4]

चन्द्रकिरण सोनरेक्सा ने 'पिंजरे की मैना' नाम से आत्मकथा लिखीं। यह आत्मकथा सन 2008 में प्रकाशित हुई।[3] इसमें लेखिका ने अपनी वंश–परम्परा एवं पूर्वजों का परिचय दिया है। समाज के सारे दूषण विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से दर्शाए गए है। तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति बड़ी दयनीय थी। लड़कियों को

लड़कों की तुलना में हीन समझा जाता है तथा परिवार उसे शिक्षा से भी वंचित रखने में संकोच नहीं करता। लेखिका ने उन विभिन्न घटनाओं एवं प्रसंगों का जिक्र किया है।

कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा' नाम से सन् 1987 में आत्मकथा प्रकाशित हो चुकी है। यह आत्मकथा पुरूष निर्मित पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों की धज्जियाँ उड़ाकर रख देती है। लेखिका ने एक ऐसे समाज में आँखे खोली जहाँ पुत्र के सामने पुत्री कुछ नहीं थी। उसके जन्म पर माता पिता निराश हो जाते हैं। छोटे और बड़े में कोई तालमेल नहीं है। उनकी इच्छाओं और भावनाओं को जानने की कोई कोशिश नहीं करता है। उन पर कड़क नियम लागू किये जाते हैं। इस में दमघोंटू जिंदगी का आवरण प्रस्तुत किया है। इसके बाद लेखिका ने 'और....और....औरत' नाम से आत्मकथा का दूसरा भाग लिखा, जो सन् 2010 में प्रकाशित हो चुका है। इसमें लेखिका ने जहाँ सिर्फ केवल रहस्य या अश्लील प्रेम कथाएं ही नहीं लिखी, वहाँ रोजमर्रा की लड़ाई को अभिव्यक्त किया है। सिर्फ जीवन में रोमांस ही सब कुछ नहीं है। अर्थ, संयम, दैनंदिन की अनिवार्य आवश्यकताओं की भी अपनी अहमियत है।

मन्नू भंडारी ने 'एक कहानी यह भी' नाम से आत्मकथा लिखी, जो सन् 2006 में प्रकाशित हुआ। इसमें मन्नु जी बचपन से लेकर पति के साथ बिताए हुए जीवन को उभारने का प्रयास किया है।

प्रभा खेतान ने अपने जीवन की 'अन्या से अनन्या' नाम से आत्मकथा लिखी, जो सन् 2007 में प्रकाशित हो चुकी है। कलकत्ते के व्यापारिक दृष्टि से संपन्न समझे जानेवाले खेतान परिवार में जन्म लेकर प्रभा ने अपने जीवन में बहुत बड़ी भूल की अपने आयु में दुगुने विवाहित पुरूष से प्रेम करती है। उस परिवार के साथ आए हुए संबंध को उजागर करने का प्रयास किया है। इसमें लेखिका को नियति का इतिवृत्त भले ही हो, भारतीय नारी की दशा–दिशा का दर्पण तो यह निश्चित है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने जीवन को दो भाग में चित्रण किया है। प्रथम खंड 'कस्तूरी कुंडल बसे' सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। इसमें लेखिका ने बुंदेलखंडी बोलीबनी के ग्रामीण लहजा को विशिष्ट रूप से पठनीय बनाया है। इसमें लेखिका ने माँ कस्तूरी के विचारों तथा उनके समाज के साथ आए सम्बंधों को चित्रित किया है। 2008 में प्रकाशित दूसरा भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' एक नारी के अंदर दो नारियाँ किस प्रकार उपस्थित रहती है, उसका चित्रण हुआ है।

सुशीला टाकभौंरे ने 'शिकंजे का दर्द' नाम से आत्मकथा लिखी है, जो सन् 2010 में प्रकाशित हुई है। लेखिका इसमें एक दलित नारी की दारूण यातना की कहानी ही नहीं कहती, उस वर्ण–व्यवस्था के अमानवीय स्वरूप के रेशे रेशे से पाठकों को परिचित कराती है, जिसने करोडों इंसानों की जिंदगी में जहर घोल

रखा है। इसमें लेखिका ने भंगी समाज का वर्णन किया है। साथ ही अपने बाल्यावस्था से लेकर पति के साथ बिताए हुए जीवन को उभारने का प्रयास किया है। भंगी समाज का सुधार 'वाल्मीकी' की पूजा करने या गाँधीवाद की माला जपने से संभव नहीं है। इसके लिए उन्हें आंबेडकर द्वारा बताए हुए मार्ग शिक्षा, संघर्ष एकता पर चलना होगा। यह आत्मकथा दलित नारी की शोषण मुक्ति की संघर्ष–गाथा है, एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम देखें सकते है कि आज महिलाएँ पंरपरागत बंधन को तोड़ते हुए अपने हक–हकूक की बात कह रही हैं और उसे पा भी रही है। अब साहित्य पर पुरुषों का एकाधिकार नहीं रहा। समाज, देश और दुनिया को अपनी दशा, दिशा और उत्थान से रुबरु करने के लिए पुरुषों के लेखनी पर निर्भर नहीं रहना पड़ रहा है। अब वे अपनी तमाम आकांक्षाओं, समस्याओं, अधिकारों अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहीं हैं। हिंदी साहित्य और लेखन में महिलाएँ अपना स्थान बनाये हुए हैं। लेखिकाओं ने नारी चेतना, नारी अस्मिता और नारी पीड़ा को युक्ति और तर्क के साथ निर्भीक और निडर होकर नारी शक्ति को व्यक्त किया है। मृणाल पांडे, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, कमल कपूर, पदमा सचदेव, जेबा रषीद, अलका सरावगी, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया आदि अनेक नाम की बहुत लम्बी सूची है, जिन्होंने अपने लेखन द्वारा काल परिवर्तन का संदेश दे रहीं हैं। सच्चाई तो यह है कि साहित्यिक क्या? महिलाएँ किसी अन्य क्षेत्रों में आज पीछे नहीं है। सभी क्षेत्रों में वे पुरुष के साथ साझेदारी निभाने को तेजी से अग्रसर हैं। उनमें आई चेतना और जागृति समाज में जो पारंपरिक छवि सदियों से बनी थी, उसको तेजी से बदलने में कामयाब हो रही हैं। नारी लेखन के फलक बहुत व्यापक है, यद्यपि उनका लेखन प्रायः नायिका व महिलाओं से संबंधित मुद्दों के इर्द–गिर्द हैं। इसके साथ ही वे समाजिक दायित्वों का भी बखूबी निर्वहन कर रही हैं। अतः महिलाओं ने अपनी रचना में इन विषयों को प्राथमिकताएँ दी। महिला लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से नारी अस्मिता को एक सशक्त रुप प्रदान किये। भारतीय परंपरागत समाज के लिए यह स्त्री संदर्भ में एक नया अहसास था। आज स्त्री की पहली शर्त है, पराधीनता.' चाहे घर के भीतर हो या बाहर यह भलीभाँति महिलाएँ समझ चुकी हैं। अब उन्हें पुरुषों के समान अधिकार चाहिए किसी भी सूरत में कम नहीं। उन्हें पुरुष और सामाजिक हिंसा, दमन, उत्पीड़न और शोषण से मुक्ति चाहिए और वह भी अविलम्ब। नारी आदर्श पत्नी के रूप में समाज द्वारा महिमामंडित कर जब चुपचाप पति या पुरुष का आदेश सिर झुका कर मानते हुए पतियों के जुल्मों को चुपचाप सहने का जमाना लद चुका है और इसकी पुष्टि कई महिला लेखिकाओं के आत्मकथाओं से स्पष्ट होता है।

संदर्भ सूचीः

1. हंसः संपादकीय, ''तुम्हीं ने तो दिए हैं हथियार,'' डॉ राजेंद्र यादव, सितंबर 2010, पृष्ठ 5.
2. ''पुनः अंकुरित होने की इच्छा और सार्मथ्य की कहानी'', गरिमा श्रीवास्तव समयांतर, जून 2008, पृष्ठ 17—19.
3. पिंजड़े की मैना – चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ – अंतिम आवरण पृष्ठ
4. जो कहा नहीं गया – कुसुम अंसल, राजपाल प्रकाशन, 1986, पृष्ठ– IV